डॉ० देवीलाल पालीवाल
एम० ए०, पी-एच० डी०

राजस्थान के प्राचीन इतिहास की शोध

राजस्थान का प्रथम क्रमबद्ध इतिहास सन् १८२९ में अंग्रेजी भाषा में इंग्लैण्ड में प्रकाशित हुआ था. ग्रन्थ का नाम था 'एनल्ज़ एन्ड एन्टिक्विटीज़ आफ राजस्थान' और लेखक थे कर्नल जेम्स टाड. उस विश्वविख्यात ग्रन्थ का महत्त्व केवल इतना ही नहीं है कि उसमें वर्धन साम्राज्य के पतन के बाद से लेकर दिल्ली सल्तनत की स्थापना तक के राजपूत काल के प्रमुख राजवंशों का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है, बल्कि उसका महत्त्व इस बात में भी है कि उसने पश्चिम के सभ्य देशों को व्यापक रूप से भारतीय ज्ञान एवं सभ्यता की उच्चता के सम्बन्ध में एक झलक दी और पूर्वीय ज्ञान के सम्बन्ध में शोध करने तथा पश्चिमी एवं पूर्वीय ज्ञान के बीच समन्वय की एक नवीन धारा प्रवाहित की.

राजस्थान का इतिहास लिखते समय कर्नल टाड की मनःस्थिति एक ऐसे गोताखोर की तरह थी, जिसे समुद्र में गोता लगाते हुए एक अमूल्य रत्न प्राप्त हो गया हो और जो उस रत्न को विश्व के सन्मुख प्रदर्शित करने का हर्ष अनुभव कर रहा हो. ग्रन्थ की भूमिका के प्रारम्भ में टाड ने लिखा था "यूरोप में इस बात पर अत्यन्त निराशा प्रकट की गई है कि भारतवर्ष में गम्भीर ऐतिहासिक चिन्तन का अभाव है... ......सामान्य तौर पर लोग इस बात को स्वतः सिद्ध मानते हैं कि भारतवर्ष का कोई राष्ट्रीय इतिहास नहीं है. फ्रांस के एक प्रसिद्ध प्राच्य विद्या-विशारद ने उपर्युक्त धारणा के विरुद्ध यह सवाल उठाया है कि यदि भारतवर्ष का कोई राष्ट्रीय इतिहास नहीं था तो अबुलफज़्ल को प्राचीन हिन्दू इतिहास की रूपरेखा तैयार करने के लिए सामग्री कहाँ से प्राप्त हुई ? वास्तव में काश्मीर की इतिहास सम्बन्धी पुस्तक 'राजतरंगिणी' का अनुवाद कर विल्सन महोदय ने इस भ्रम को मिटाने में काफी योग दिया है. इससे यह प्रमाणित हो गया है कि नियमित इतिहास लिखने की परिपाटी का भारतवर्ष में अभाव नहीं था. ....तथा ऐसी सामग्री आज से कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध थी ....यद्यपि फ्रांस और जर्मनी के विद्वानों के साथ-साथ कोलबुक विलकिन्स, विल्सन एवं हमारे देश के अन्य विद्वानों ने भारतवर्ष के गुप्त विद्याभंडार के कुछ विषयों को यूरोपवासियों के सन्मुख प्रकट किया है, किन्तु अब भी इतना ही कहा जा सकता है कि हम अभी केवल भारतीय ज्ञान की ड्योढ़ी तक पहुँचे हैं.'

कर्नल टाड ने ग्रन्थ की भूमिका में मध्ययुग के दौरान में हुए भारतीय साहित्य एवं कला के विनाश के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा : 'भारतवर्ष के विभिन्न भागों में अब भी ऐसे बड़े-बड़े पुस्तकालय विद्यमान हैं जो इस्लाम धर्म के प्रवर्तकों द्वारा विनष्ट होने से बच गये हैं, उदाहरण के लिए जैसलमेर और पट्टन के प्राचीन साहित्य के संग्रह...........इस प्रकार के कई अन्य छोटे-छोटे संग्रहालय मध्य एवं पश्चिमी भारत के प्रदेशों में विद्यमान हैं जिनमें से कुछ तो राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति हैं और कुछ जैनसम्प्रदाय के अधिकार में हैं.'

कर्नल टाड का ग्रंथ, प्रकाश-स्तम्भ बन गया और उसकी रोशनी में पश्चिमी देशों के पुरातत्त्ववेत्ता एवं भारतीय विद्वान्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारतीय इतिहास की खोज करने लगे. समय समय पर कतिपय जर्मन, अंग्रेज, इटालियन पुरातत्त्ववेत्ता एवं विद्वान् भारतवर्ष आये और उन्होंने राजस्थान के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया और उस बहुमूल्य सामग्री का संग्रह किया, जिसे सामान्यतः भारतीय महत्त्वहीन मानते थे. शोध के इन प्रयत्नों से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात जो प्रकाश में आई, वह यह कि प्राचीन साहित्य सामग्री को संग्रहीत करने तथा समकालीन साहित्य की रचना करने की दृष्टि से जैन-सम्प्रदाय ने लम्बे काल तक इस प्रदेश की भारी सेवा की. राजस्थान एवं राजस्थान के बाहर मध्ययुग के दौरान में जो भी पुस्तकालय बनाये गये एवं रक्षित किये गये, उनका सर्वाधिक श्रेय जैन विद्वानों को है.

अंग्रेजों द्वारा प्रारम्भ में प्रायः राजस्थान को शौर्य, सभ्यता एवं ज्ञान की दृष्टि से एक महत्त्वहीन प्रदेश माना जाता रहा. मराठों की शक्ति के अभ्युदय ने राजपूतों की शक्ति को क्षीण एवं तहस-नहस कर दिया था, इसलिए राजपूतों की शक्ति, शौर्य एवं प्रभाव के महत्त्व को समझ नहीं पाये थे. उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में उत्तरी भारत के अपने विजय-प्रयाण के दौरान में जब वे राजपूतों के सम्पर्क में आये तो उनका एक नवीन प्रकार की शक्ति से सम्पर्क हुआ. टाड ने सहसा कहा : 'राजस्थान में कोई छोटा राज्य भी ऐसा नहीं है, जिसमें थर्मोपोली जैसी रणभूमि न हो और शायद ही कोई ऐसा नगर मिले जहाँ सियोनिडास जैसा वीर पुरुष उत्पन्न न हुआ हो.' विदेशी अंग्रेज जाति के लिये यह बात एक बड़ा रहस्योद्घाटन थी. राजस्थान के प्राचीन इतिहास की उत्कट वीरता, त्याग और बलिदान की बातों को सुनकर वे चकाचौंध-से हो गये और आगे वे राजपूत जाति को अपना मित्र एवं हमदर्द बनाये रखने की आकांक्षा रखने लगे.

पाँचवीं शताब्दी से लेकर १२ वीं शताब्दी का काल राजस्थान के इतिहास का बहुत महत्त्वपूर्ण युग रहा. इसी काल में बाह्य जातियाँ हूण, गूजर आदि बलूचिस्तान और सिन्ध के मार्ग से उत्तरी और पश्चिमी भारत में आयीं. ऐसा माना जाता है कि उनमें से गूजर, सर्वप्रथम, जब कि वे दक्षिणी पंजाब से खदेड़े गये, राजस्थान में आये. यहाँ आने पर इन लोगों ने कई भागों में बँटकर दक्षिणी राजस्थान के मारवाड़ प्रदेश के नागौर व भिन्नमाल तथा मेवाड़, अजमेर आदि में अपने राज्यों की स्थापना की. गूजरों के बाद प्रतिहार, चालुक्य, चौहान, परमार, कछवाहा आदि इसी प्रकार अस्तित्व में आये. इन जातियों ने इस प्रदेश में आबाद होने के बाद धीरे-धीरे अपने क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की कलाओं एवं साहित्य आदि का विकास किया, इस प्रदेश का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह प्रदेश प्राचीन काल में न राजस्थान कहलाता था, न रायथान, न रजवाड़ा और न राजपूताना. ८ वीं से १० वीं शताब्दी में तो राजस्थान का समूचा या यों कहा जाय इसका अधिकांश भाग गूर्जरत्रा कहलाता था, जैसा कि चीनी यात्री ह्वानसांग के वर्णन से प्रतीत होता है. वास्तव में राजस्थान अथवा गुजरात नाम से पुकारे जाने वाले भू-क्षेत्र बाद में बने, इसके पूर्व के गूर्जरत्रा प्रदेश में राजस्थान का दक्षिणी भाग, मेवाड़, मारवाड़, वर्तमान मालवा तथा गुजरात क्षेत्र सम्मिलित थे.

यद्यपि राजपूताना अथवा राजस्थान का नाम प्राचीन नहीं है और वह नाम भारत में मुसलमानों के प्रवेश के बाद में ही धीरे-धीरे प्रचलित हुआ, पर यह स्पष्ट है इस प्रदेश में तब कई ऐसी जातियाँ बसी हुई थीं जो बाद में राजपूत कहलाईं, जिनमें प्रतिहार, गुहिलोत, चापोत्कट तथा चाहमाण प्रमुख थीं. गूर्जरत्रा काल में इस क्षेत्र में साहित्य एवं कला का जो विकास हुआ उसका भारी ऐतिहासिक महत्त्व है. गूर्जर प्रतिहारों द्वारा मूर्तिकला एवं चित्रकला को प्रचुर मात्रा में प्रोत्साहन दिया गया था. मेवाड़ के जगत, डूंगरपुर के अमझारा तथा गुजरात की शामलाजी की प्रतिमाएँ और हर्षनाथ सीकर व मारवाड़ के कई क्षेत्रों से प्राप्त मूर्तियाँ गुप्त, पूर्व मध्यकाल तथा मध्यकाल की सुन्दर कला की परिचायिका हैं. इस युग में ताड़पत्र पर चित्रमय ग्रंथों की रचना की गई, जिनको ऊपर और नीचे ढँकने के लिए चित्रित लकड़ी की 'पटलियाँ' लगाई जाती थीं. इस प्रकार का वि० सं० १२१६ का भद्रबाहु स्वामी रचित सचित्र कल्पसूत्र जो ताड़पत्र पर 'जैन ग्रंथ भण्डार जैसलमेर' की निधि है, भारतवर्ष के पश्चिमी भाग का प्राचीन कलात्मक ग्रंथ है. इसी ग्रथभंडार की वि० सं० १२६९ की लिखी सचित्र कालकाचार्य कथा एक दूसरा ताड़पत्र ग्रंथ है. नेमिचन्दसूरिकृत वि० सं० १२९५ का प्रवचनसारोद्धार वृत्ति भी तत्कालीन चित्रकला का एक अमूल्य ग्रंथ है. यही नहीं, राजस्थान के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चित्रित अतिप्राचीन ताड़पत्र के ग्रंथ राजस्थान की भूमि से बाहर निकल कर ठेठ अमरीका पहुँचे हैं. इनमें से ताड़पत्र पर चित्रित 'सप्तग पडिकमण सुत्त चुन्नी' नामक ग्रन्थ बोस्टन के संग्रहालय की भारतीय कला दीर्घिका में प्रदर्शित है और मेदपाट (मेवाड़) के आघाट या वर्तमान आहाड़ में चित्रित है. यह १२६० ई० का गुहिल तेजसिंह के शासनकाल में कमलचन्द्र द्वारा लिखा गया था. इसी प्रकार की अन्य कृतियों रास तथा कुमार स्वामी के संयुक्त संग्रह के ग्रंथों में १४४७ ई० के कल्पसूत्र व कालकाचार्य कथानक नामक ग्रंथ भी शामिल हैं. सन् १४२२-२३ ई० में रचित महाराणा मोकल के काल का 'सुपासनाह चरित्रम्' नामक ग्रंथ मेवाड़ में मिला है.

इस भाँति शौर्य, शक्ति और साहस के साथ राजस्थानी विद्या, ज्ञान, साहित्य, चित्रकला, स्थापत्य एवं मूर्तिकला आदि का भी अपना गौरवशाली पक्ष रहा है. यही कारण है कि इस प्रदेश में ऐतिहासिक स्मारकों के समान प्राचीन पुस्तकालयों एवं कला-संग्रहों की संख्या भी बहुत है, जिनमें से कोई तो इतने बड़े रहे हैं, जिनकी टक्कर के भारत में अन्यत्र बहुत कम देखे गये हैं. लगभग आठ सौ वर्षों तक जैन-सम्प्रदाय का प्रभाव इस प्रदेश पर रहने के कारण प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजस्थानी साहित्य एवं कला पर उसकी छाप स्पष्ट रूप से प्रकट होती है. उस काल में जैन विद्वानों द्वारा साहित्यिक, कलात्मक एवं अन्य विषयों सम्बन्धी कई रचनायें तैयार की गईं. इससे भी बड़ी सेवा जैन-सम्प्रदाय ने मध्ययुगीन बर्बरता एवं विध्वंस से प्राचीन साहित्य की रक्षा करने की है. राजस्थान के विभिन्न इलाकों में जैन विद्वानों द्वारा गुप्त पुस्तकालयों का निर्माण किया गया. मरुभूमि में स्थित जैसलमेर का जैन-ग्रन्थ भंडार इस प्रकार के पुस्तकालयों में सबसे बड़ा रहा है. इन पुस्तकालयों में राजस्थान एवं भारत के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले हस्तलिखित ग्रन्थ तो हैं ही, परन्तु साहित्यकाल का कोई अंग नहीं हैं, जिस पर मूल्यवान् ग्रन्थ प्राप्त नहीं हो. राजस्थान में प्राप्त विभिन्न पुस्तकसंग्रहों की एक विशेष बात यह है कि मुगल काल में राजस्थानी शासकों का देश के दूरस्थ प्रदेशों से सम्पर्क रहने के कारण, इन संग्रहों में देश की विभिन्न भाषाओं के हस्तलिखित ग्रन्थ भी उपलब्ध हैं. उदाहरण के लिए जयपुर में यदि बंगाली भाषा के ग्रन्थ मिलेंगे तो बीकानेर में कन्नड़ के और उदयपुर में गुजराती भाषा के ग्रन्थ उपलब्ध हो जायेंगे.

राजस्थान के विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त होने वाली ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण निधि के अलावा इस प्रदेश में कुछ ऐसी और साहित्यिक सामग्री रही है, जो इतिहास पर थोड़ी-बहुत दृष्टि डालने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी, जिसके महत्त्व को सर्वप्रथम कर्नल टाड ने प्रकट किया. उसमें भाटों और चारणों की वंशावलियाँ ख्यातें और रहानियाँ मुख्य हैं. प्राचीन पुस्तकों के नष्ट एवं लुप्त हो जाने के कारण भाटों आदि ने मध्यकाल में ऐसी कई राजस्थानी भाषा में पद्यमय ख्यातें, बातें, डिंगलगीत आदि लिखे, जिनमें उन्होंने इस देश पर राज्य करने वाले तत्कालीन राजवंशों के पिछले नाम, जो उन्हें मिल सके, दर्ज किये और पुराने नामों में से जिन-जिन प्रसिद्ध राजाओं के नाम सुनने में आते थे, वे लिखे. उन्होंने अपनी पुस्तकों को पुरानी बतलाने के लिये कल्पित नामों एवं असत्य संवतों का उपयोग भी किया. उनकी ये पद्यमय एवं वीररसपूर्ण रचनाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आकर अत्यधिक अतिशयोक्तिपूर्ण हो जाती थीं. कुछ इसी प्रकार के पद्यमय वंश-इतिहास-ग्रन्थों की रचनाएँ की गई हैं जो विभिन्न शोधकों द्वारा पिछले वर्षों में प्रकाश में लाई गईं. ऐसी रचनाओं में पृथ्वीराज रासो, बीसलदेवरासो, हमीरायण, हमीररासो. रतनरासो, विजयविलास, सूर्यप्रकाश, जगतविलास, राजप्रकाश, मुहणोत, नैणसीजी री ख्यात, शिखरवंशोत्पत्ति, परमालरासो, केसरीसिंहसमर, सुजानचरित, छत्रप्रकाश, हमीरहठ, हिम्मतबहादुर ग्रंथावली, सांभरयुद्ध, जाजवयुद्ध, बुद्धिविलास, गुलालचरित, भावदेव सूरिरास, लावारासा, रतनरासा, जसवंत उद्योग, कायमरासो, अल्लाखाँ की पैठी, परमारवंश दर्पण, राज रसनामृत, छंदराउ जैतसी, वचनिका, राठोड़ रतन सिंहजी की महेसदासोतरी, महाराणा यशप्रकाश, राजविलास, उदयपुर री ख्यात, अचलदास खीची री वात, ख्यातवात संग्रह, जगविलास, भीमविलास, राणारासो, सज्जन प्रकाश, संगतरासो आदि प्रमुख हैं.

उपर्युक्त सूचित एवं प्रकाशित रचनाओं के अतिरिक्त भी दिनानुदिन इस क्षेत्र में नव्य शोध एवं ऐतिहासिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृतियाँ उपलब्ध होती ही रहती हैं. स्फुट पद्यात्मक वीररसमूलक अनेक चरित्रात्मक कृतियाँ ऐसी हैं जिनके रचयिता अज्ञात हैं. इसी प्रकार की कतिपय पुस्तकों के सम्बन्ध में, जो टाड ने जैसलमेर से ले जाकर रायल एशियाटिक सोसायटी को दी थी और जिनमें ५ से ८ शताब्दी पूर्व की कुछ जैन पांडुलिपियाँ सम्मिलित थीं; उन्होंने बताया था कि–'इन पुस्तकों में लिख गई कई बातों से, जिनका अभी तक निरीक्षण नहीं हुआ है, प्राचीन भारत के इतिहास पर नया प्रकाश पड़ेगा.' राजस्थान में मध्यकाल में सांगा, प्रताप एवं दुर्गादास जैसे शूरवीर योद्धा उत्पन्न हुए तो कुम्भा जैसे वीर किन्तु साहित्य एवं कला प्रेमी शासक भी हुए, जिन्होंने अपने काल के साहित्य, शिल्प, स्थापत्य, संगीत एवं चित्रकला को प्रोत्साहित ही नहीं किया अपितु उनपर अपनी छाप भी छोड़ी. निस्संदेह समय की ही विध्वंस आंधी ने उस काल की अधिकांश मूल्यवान् सामग्री नष्ट कर दी, फिर भी उनमें से इतिहास के उपयोग की दृष्टि से यथेष्ट अवशेष बच गये हैं. यही बात विभिन्न स्थानों पर प्राप्त शिलालेखों एवं मन्दिरों आदि में प्राप्त ताम्रपत्रों आदि के सम्बन्ध में कही जा सकती है. कर्नल टाड ने राजस्थानियों के समक्ष इस प्रकार की वस्तुओं का ऐतिहासिक महत्त्व प्रकट किया.

बाद में अंग्रेजी काल में राजस्थान के राजाओं में प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डालने वाली इस प्रकार की पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री का संग्रह करने और अपने-अपने वंश का क्रमबद्ध इतिहास तैयार कराने की प्रवृत्ति पैदा हुई, इस दृष्टि से उन्होंने पुरातत्त्व संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों का निर्माण किया. कविराजा श्यामलदास द्वारा रचित 'वीरविनोद, एवं महाकवि सूरजमल कृत 'वंशभास्कर' नामक ऐतिहासिक ग्रन्थ उसी प्रवृत्ति के प्रतीक हैं.

किन्तु राजस्थान के राजपूत शासकों के लिये पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री का संग्रह करने एवं ऐतिहासिक शोध करने की प्रवृत्ति नई नहीं थी. मुस्लिम काल एवं मराठा काल के निरन्तर विध्वंस कार्य ने राजपूत राज्यों पर जो दुष्प्रभाव डाला उसका सर्वाधिक शिकार ज्ञान और शोध की प्रवृत्ति हुई. काल ने ज्ञान के साधनों और ज्ञान की प्रवृत्ति दोनों पर दुष्प्रभाव डाला था. इतिहास-प्रेम की दृष्टि से इस प्रदेश के मध्यकाल के शासकों में महाराणा कुम्भा का नाम सर्वोपरि आता है. महाराणा कुम्भा मेवाड़ के यशस्वी, विद्वान् एवं विद्याप्रेमी शासक थे. उन्हें सभी प्रकार की कलाओं एवं विद्याओं के प्रति अगाध रुचि थी. कुम्भा के समय उनके पूर्वजों की शुद्ध नामावली तथा उनका चरित्र उपलब्ध नहीं था, जिससे महाराणा ने अपने राज्य में मिलने वाले अनेक प्राचीन शिलालेखों का संग्रह करवाया और उनके आधार पर अपनी वंशावली ठीक की और यथासाध्य उनका वृत्तान्त भी एकत्र किया. उन्होंने एकलिंग माहात्म्य का 'राजवर्णन' नामक अध्याय अनेक प्राचीन शिलालेखों के आधार पर स्वयं संग्रह किया. उन्हीं के समय की बड़ी प्रशस्ति की तीसरी शिला के आरम्भ में जनश्रुति के आधार पर उनके पूर्वजों का वर्णन है, जिसके बाद 'राजवर्णन' प्राचीन प्रशस्तियों के आधार पर लिखा गया. शिलावाले 'राजवर्णन' का अधिकांश भाग नष्ट हो गया है, किन्तु उसकी पूर्ति महाराणा के 'एकलिंग माहात्म्य' के 'राजवर्णन' अध्याय से हो जाती है। इस भाँति महाराणा कुम्भा को राजपूताने का सर्वप्रथम प्राचीन शोधक माना जाना चाहिए.

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, राजपूताना के प्राचीन इतिहास की शोध एवं रचना की दृष्टि से आधुनिक काल में प्रथम क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित प्रयत्न अंग्रेज अधिकारी कर्नल टाड द्वारा किया गया. वे १७ वर्ष की आयु में सन् १७९९ में भारत आये थे. पदोन्नति होने के कारण वे कुछ ही अर्से में मराठा सरदार दौलतराव सिन्धिया के दरबार के ब्रिटिश राजदूत और रेज़िडेन्ट मि० ग्रीम मर्सर के साथ रहने वाली सरकारी सेना की टुकड़ी के अध्यक्ष नियत हुए. उस समय सिन्धिया का मुकाम मेवाड़ में था. इसी काल से टाड का कार्य शुरू होता है. प्रारम्भ में उन्होंने मुख्यतः पिंडारियों के दमन में सहायता करने की दृष्टि से अंग्रेजी सरकार के लिये पैमाइश करके राजपूताने का भौगोलिक नकशा तैयार किया. राजपूताने का सर्वप्रथम नकशा बनाने का श्रेय भी टाड को ही मिला. सन् १८१८ में पश्चिमी राजपूताने के राजाओं के साथ ब्रिटिश सरकार की सन्धि होने के साथ कर्नल टाड उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी, सिरोही और जैसलमेर राज्यों के पोलिटिकल एजंट नियुक्त हुए. १८२२ में वे स्वदेश लौट गये.

टाड को वीर जातियों के इतिहास से बड़ा प्रेम था। उन्होंने राजपूतों के इतिहास की सामग्री का संग्रह करना प्रारम्भ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया और उदयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी तथा सिरोही राज्यों में भ्रमण कर वहाँ के अनेक शिलालेख, दानपत्र, सिक्कों आदि का बड़ा संग्रह कर लिया. जहां वे न जा सके वहाँ से इतिहास-सम्बन्धित सामग्री प्राप्त की. उनके साथ रहनेवाले एक ब्रिटिश अफसर कप्तान वाघ ने, जो चित्रकला में बड़े निपुण थे, प्राचीन मंदिरों, मूर्तियों आदि के चित्र उनके लिये तैयार किये. राजस्थान के इतिहास के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की सामग्री की प्राप्ति एवं संग्रह में टाड को सर्वाधिक मार्गदर्शन एवं प्रेरणा यति ज्ञानचन्द्र से मिली, जो निरन्तर उनके साथ रहे. यति ज्ञानचन्द्र को टाड अपना गुरु मानते थे और यति उन्हें पृथ्वीराज रासो आदि भाषाकाव्यों का अर्थ सुनाते एवं शिलालेख आदि पढ़ते थे. कर्नल टाड राजपूताने से संस्कृत और राजस्थानी भाषा के अनेक ग्रँथ, ख्यातें २० हजार प्राचीन सिक्के, कई शिलालेख तथा अन्य सामग्री अपने साथ विलायत ले गये. लंदन पहुँचने के बाद सन् १८२९ में जैसी कि आम कहावत हो गई है, उन्होंने 'राजपूताने का कीर्ति स्तम्भ' रूप ग्रंथ 'एनलस एण्ड एंटिक्विटीज आफ राजथान' प्रकाशित किया, जिसने यूरोप भर में भारतीय सभ्यता की प्राचीनता एवं उच्चता, राजपूतों की वीरता शौर्य एवं उदारता आदि गुणों के सम्बन्ध में शोहरत फैला दी. उनका दूसरा ग्रंथ 'ट्रैवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' उनकी मृत्यु के बाद सन् १८३९ में प्रकाशित हुआ.

जिस काल में टाड ने राजपूताने की इतिहास सम्बन्धी रूप-रेखा तैयार की, उस काल में अंग्रेज पिंडारियों के विनाश एवं मराठों की पराजय में संलग्न थे, जिसमें उनको प्राचीन एवं वीर राजपूत जाति के पूर्ण सहयोग की आवश्यकता थी. इसके अलावा अंग्रेज इस बात के लिये भी सचेष्ट थे कि दिल्ली के मुगल-तख्त पर बैठे मराठों के कठपुतली नामधारी मुगल शाहंशाह की बादशाहत का परम्परागत राजनैतिक प्रभाव भारत से उठ जाये, उसके लिए भी मुस्लिम विजेताओं के खिलाफ निरन्तर संघर्ष में लगे रहे. राजपूतों का नैतिक समर्थन जरूरी था. ब्रिटिश साम्राज्य की इस उद्देश्य एवं प्रयोजन की पूर्ति के प्रयत्न की एक स्पष्ट झलक हमें टाड के ग्रन्थ में मिलती है. यह कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि ब्रिटिश साम्राज्य की 'फूट डालो एवं शासन करो' की नीति का रंग भी ग्रन्थ पर चढ़ गया है, जो राजपूतों एवं मराठों, राजपूतों एवं मुगलों आदि के बीच बताये गये सम्बन्धों से प्रकट होता है. किन्तु ध्यान रखने की बात यह है कि टाड एक साम्राज्यवादी शक्ति का सेवक था, जिसके साथ उसकी जिम्मेदारियाँ और कर्त्तव्य जुड़े हुए थे. इसके अलावा उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में उठ रहे साम्राज्यवादी भावनाओं के ज्वार का वह भी स्वाभाविक शिकार था. फिर भी वह उन कतिपय अंग्रेज अफसरों में था, जो भारतीयों को हेठी निगाह से नहीं देखते थे. उसकी मनोवृत्ति एवं धारणाओं पर सर्वाधिक प्रभाव राजपूतों के सम्पर्क में आने पर पड़ा और उदयपुर का सिसोदिया राजवंश तो उसके लिए विश्व-इतिहास के महानतम एवं आदर्श राजवंशों में से एक हो गया. निस्संदेह ही जिस काल में, थोड़े समय में और सीमित सामग्री के आधार पर, मुख्यतः ख्यातों के आधार पर, टाड ने ग्रन्थरचना की, अनेक प्रकार की त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक था. उन्होंने किम्बदन्तियों एवं अविश्वसनीय जनश्रुतियों का भी अत्यधिक मात्रा में समावेश किया है. फिर भी उनके ग्रंथ की एक और महत्त्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक विशेषता यह है कि उन्होंने ग्रंथ में अंग्रेजों द्वारा राजपूतों के साथ की गई सन्धियों के विपरीत आचरण करने एवं राजपूत राज्यों के आन्तरिक मामलों में मनमानी दखलंदाजी के खिलाफ भी आवाज उठाई और इसके द्वारा होनेवाले राजपूत राज्यों के स्वतंत्रता-हरण के दुष्परिणाम की ओर भी स्पष्ट संकेत किया. सम्भवतः उनकी इसी मनोवृत्ति के कारण उन्हें १८२२ में यकायक भारत छोड़कर जाना पड़ा था.

टाड के ग्रंथ 'राजस्थान के इतिहास' का भारतीय जन-मानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा. यह सही है कि इस ग्रंथ की कुछ बातों का ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने अपने हितों के लिये दुरुपयोग किया, किन्तु यह भी सही है कि इस ग्रंथ ने देश के कई भागों में मुख्यतः सुदूर बंगाल जैसे प्रान्त में नवजीवन का संचार किया और परोक्ष रूप से राष्ट्रीय जागृति में बड़ा योगदान दिया. इस ग्रंथ ने विश्व के सन्मुख भारतीय सभ्यता की महानता प्रकट की और मुख्यतः राजस्थान की स्थिति, तथा राजपूतों के शौर्य का यहाँ के साहित्य, कला एवं लोकजीवन के गौरवपूर्ण स्वरूप का दिग्दर्शन कराया.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टाड ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ की भूमिका में लिखा था, 'मैंने इन की (भारत के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली सामग्री की) जानकारी यूरोपीय विद्वानों को कराई है, परन्तु मुझे आशा है कि इससे अन्य लोगों को इस दिशा में और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी.' टाड की आशा निष्फल नहीं गई. १८७४ में प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् डा० बूल्हर प्राचीन ग्रन्थों की तलाश में भारत आये और जैसलमेर भी गये. उनके साथ जर्मनी के एक अन्य बड़े विद्वान् हरमन याकोबी भी थे, जिन्होंने राजस्थान की प्राचीन देशभाषा अपभ्रंश के साहित्य का सर्वप्रथम वैज्ञानिक संशोधन एवं प्रकाशन प्रारम्भ किया था. वे कदाचित् यहाँ एक सप्ताह से अधिक नहीं रह सके. उन्होंने लिखा है, 'मरुधर प्रदेश के इस विकट भाग के इस विकट स्थान में, जहाँ खराब पानी और नहारू के रोग कीप्रचु रता है, अल्पकाल के लिये भी ठहरना कम कष्टदायक नहीं है.' अतएव वे स्पष्ट ही इस विशाल भण्डार में बहुत कम काम कर सके. फिर भी डा० बूल्हर के इस प्रारम्भिक कार्य का यह महत्व है कि उन्होंने राजस्थान के साहित्यसंग्रह को सबसे पहले संसार के सन्मुख उपस्थित किया.

जैसलमेर भण्डार को पूरी तरह प्रकाश में लाने का श्रेय श्री श्रीधर रामकृष्ण भण्डारकर को है जो बम्बई सरकार की ओर से १६०५ में राजस्थान के प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक-संग्रहों का निरीक्षण करने भेजे गये थे. जैसलमेर पहुँचने पर श्रीभाण्डारकर को ज्ञात हुआ कि यहाँ एक नहीं दस पुस्तक-संग्रह हैं. आपने इनका विवरण प्रस्तुत किया और हर एक संग्रह की महत्वपूर्ण पुस्तक का भी उल्लेख किया. कुछ पुस्तकों का सारांश भी आपने अपनी विवरणी में दिया. वहाँ पुस्तकों की अवस्था बड़ी शोचनीय थी, श्रीभण्डारकर ने लिखा है कि 'इधर-उधर बिखरे ताड़पत्रों के ढेर और फटे हुए कागज-पत्रों के ढेर को देखकर यही कहा जा सकता है कि समय और असावधानता दोनों ने ही वहाँ विनाश का कार्य आरम्भ कर रखा है. श्री बूल्हर को वहाँ की संवत् ११६० की पुस्तक प्राचीनतम मिली थी, किन्तु श्री भंडारकर को उससे भी प्राचीन ग्रन्थ सं० ६२४ का मिला. उन्होंने कुछ पुस्तकों की नकल भी कराई. श्रीभण्डारकर के बाद बड़ौदा सरकार की ओर से १६१५ में एक सुयोग्य विद्वान् श्री चिमनलाल दलाल ने जैसलमेर आकर वहाँ के मुख्य भण्डार के प्रायः सभी ताड़पत्रीय ग्रन्थों की सूची बनाई जो बाद में 'गायकवाड़ ओरियण्ट सिरीज' में प्रकाशित की गई.

जैसलमेर संग्रह का नियमित एवं विशेषरूप से व्यवस्थित निरीक्षण करने का श्रेय आचार्य श्री जिनविजयजी मुनि को प्राप्त है. यहाँ आप १६४२ में १०-१२ सुयोग्य लेखकों के साथ लगभग पाँच महीनों तक रहे. मुनि श्री जिन-विजय जी की गिनती आज राजस्थान के अग्रगण्य पुरातत्ववेत्ताओं एवं इतिहासज्ञों में है, और आपके निरीक्षण में राजस्थान के प्राचीन ग्रन्थों की शोध एवं सम्पादन कार्य किया जा रहा है. आपको जैसलमेर जाने की प्रेरणा जर्मनी में जर्मन विद्वान् डा० हर्मन याकोबी से हुई प्रत्यक्ष मुलाकात से प्राप्त हुई थी. पाँच महीनों में श्रीमुनिजी ने अथक परिश्रम करके लगभग २०० ग्रन्थों की सम्पूर्ण प्रतिलिपियाँ कराईं, जिनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा प्राचीन देश्यभाषा में ग्रथित न्याय, व्याकरण, आगम, कथा, चरित्र, ज्योतिष, वैद्यक, छन्द, अलंकार, काव्य, कोष आदि विविध विषयों की रचनायें अन्तर्भूत हैं. इनके पचासों फोटोप्लेट भी उतरवाये गये हैं. मुनिजी ने वहाँ लोंकागच्छीय उपाश्रय के ज्ञान भण्डार का प्रथम बार निरीक्षण किया. तब से मुनिजी ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन का कार्य राजस्थान पुरातत्व मंदिर एवं विद्याभवन बम्बई से कराते रहे हैं और कई मूल्यवान् एवं अप्राप्त ग्रन्थ प्रकाश में आये हैं. प्रख्यात जैन विद्वान् मुनि श्रीपुण्यविजयजी ने भी जैसलमेर के ग्रन्थागारों को व्यवस्थित करने में दीर्घकाल पर्यन्त घोर परिश्रम किया है। आपने ग्रन्थों की व्यवस्थित सूचियाँ तैयार कीं, जीर्णशीर्ण प्रतियों के चित्र उतरवाये और भविष्य की सुरक्षा का सुन्दर आयोजन किया।

जैसलमेर के अलावा उदयपुर, बीकानेर, जोधपुर, बूंदी, किशनगढ़, नागौर, अलवर, हनुमानगढ़, राजगढ़ आदि विभिन्न स्थानों के राजकीय संग्रह भी ऐतिहासिक एवं साहित्य तथा प्राचीन ज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहे हैं. श्रीधर भण्डारकर ने इनमें से अधिकांश संग्रहालयों का निरीक्षण किया था. श्रीधर के छोटे भाई श्री देवदत्त ने बाद में राजस्थानी प्राचीन साहित्य की खोज के लिये उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, कोटा, किशनगढ़, सिरोही आदि राज्यों के दौरे किये. आपने अपने शोधकार्य का विवरण सरकारी पुस्तकों में प्रकाशित कराया. श्रीधर की सूची से कई पुस्तकें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा श्री देवदत्त की बताई गई कई मूर्त्तियाँ आज यथास्थान नहीं मिलतीं, पता नहीं कौन कहाँ ले गया. भारत के प्रख्यात इतिहासकार सर यदुनाथ सरकार एवं मराठा इतिहासकार डा० जी० एस० सर देसाई ने जयपुर संग्रह के संबंध में मत व्यक्त करते हुये कहा था—'यदि संग्रह के कागजातों की परीक्षा की जाय तो ऐसी मूल्यवान् जानकारी मिलने की संभावना है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती. प्रसन्नता की बात है कि राज्यसरकार ने राज्य का एक और पुरातत्व का विभाग अलग से खोला है जो प्रारम्भ में राजस्थान के प्रमुख इतिहासकार डाक्टर मथुरालाल शर्मा के निर्देशन में विकसित हुआ और श्री नाथूराम खडगावत के संचालन में निरन्तर प्रगति कर रहा है. और यह आशा की जा सकती है कि विभिन्न राज्यों के पुराने संग्रहालयों के व्यवस्थित होने पर वह न केवल राजस्थान बल्कि सम्पूर्ण भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में कई नई बातें प्रकट करेगा और इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति करने में सहायक होगा.

राजस्थान के प्राचीन साहित्य की खोज करने तथा उसको विश्व के सन्मुख उपस्थित करने की दृष्टि से एक अन्य विदेशी विद्वान् ने भी भारी सेवा की है. उस विद्वान् ने सेवा ही नहीं की बल्कि उसने अपनी युवावस्था में ही इस कार्य के हेतु अपने जीवन का बलिदान भी कर दिया. वह विद्वान् थे इटलो के डा० एल० पी० तैसीतौरी. वे अपने देश में रहते हुये राजस्थान के और उसके साहित्य के प्रेमी हो गये थे. कहा जाता है कि उन्होंने राजस्थान में आकर अपना जीवन बिताना अपनी साध बना ली थी. वे सन् १९१४ में भारत आये और बंगाल एशियाटिक सोसाइटी में बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल सर्वे आफ राजपूताना सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर नियुक्त हुये. उसी वर्ष आपने राजस्थान में कार्य शुरू किया और १९१८ में ३१ वर्ष की आयु में बीकानेर में आपका देहावसान हो गया. इस काल में आप द्वारा किये गये शोध कार्य का विवरण एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित किया है. जोधपुर और बीकानेर के डिंगल ग्रन्थों की आपके द्वारा तैयार की गई सूचियाँ भी सोसाइटी ने तीन भागों में प्रकाशित की हैं. राजस्थानी इतिहास एवं साहित्य के बारे में बाद के पुस्तकलेखकों ने इस सारी सामग्री का तथा शिला लेखों, मुद्राओं, मूर्तियों आदि अन्य सामग्री का जो संकलन आपने बीकानेर में किया था, उसका पूरी तरह उपयोग किया है. डा० तैसीतोरी का जीवन वृत्तान्त (अप्रेल, १९५० के अंक में) छाप कर "राजस्थान भारती" ने सराहनीय कार्य किया है, क्योंकि डा० तैसीतोरी की राजस्थानी साहित्य के प्रति सेवाओं के बावजूद वे बहुत कम प्रकाश में लाये गये थे.

डा० तैसीतोरी में एक महान् मानवीय गुण था. वे पश्चिमी होते हुए भी भारत के प्रति महान् आदरभाव रखते थे, जो उस काल में एक बड़े नैतिक साहस की बात थी. उन्होंने स्वयं एक पत्र में लिखा था, "मैं भारत में इसीलिए आया हूँ क्योंकि मुझे भारत के लोगों व उनकी भाषा और साहित्य से प्रेम है....मैं कोई अंग्रेज नहीं हूँ जो उन सब चीजों को हेठी निगाहों से देखते हैं जो इंग्लैंड की या कम से कम यूरोप की नहीं है. मेरे मन में भारतवासियों के प्रति उच्चतम आदर और सराहना के भाव हैं. "कर्नल टाड और तैसीतोरी में एक और बड़ी समानता थी. दोनों को दो जैन विद्वानों से सहायता मिली थी और दोनों इनको अपना गुरु मानते थे. टाड के सहायक, मार्गदर्शक एवं गुरु थे जैन यति ज्ञानचन्द और तैसीतोरी के थे आचार्य विजयधर्म सूरि. यह स्पष्ट है कि जैन सम्प्रदाय ने जो सेवा राजस्थानी साहित्य की रचना एवं सुरक्षा की की है उतनी ही उन्होंने बाद के काल में उसको व्यवस्थित ढंग से विश्व के सन्मुख प्रस्तुत कराने में भी की है. यह भी संयोग और आश्चर्य की बात नहीं है कि आज भी प्राचीन साहित्य एवं इतिहास के संपादन, आदि की दृष्टि से सर्वाधिक सेवाएँ मुनि जिनविजय, मुनि कान्तिसागर आदि जैन विद्वान् कर रहे हैं.

राजपूताना के साहित्य एवं इतिहास के सम्बन्ध में किये गये उपर्युक्त शोध-कार्य के अलावा, कुछ अन्य अंग्रेज अधिकारियों ने भी इस कार्य में अपना योगदान दिया, जिनमें अलेग्जेंडर किलोक फर्ब्स, अलेग्जेंडर कनिंगहम, कार्लाइल एवं गैरिक आदि मुख्य हैं. गुजरात के इतिहास 'रासमाला' नामक ग्रन्थ के रचयिता श्री फार्ब्स ने आबू के कई शिलालेखों की नकलें कीं और देलवाड़े के दोनों जैन मन्दिरों की कारीगरी का वृत्तान्त लिखा. भारत सरकार के आर्कियालाजिकल डिपार्टमेंट के तत्कालीन अध्यक्ष श्री कनिंगहम ने राजपूताना के कई स्थानों का दौरा कर वहाँ के शिलालेखों एवं शिल्प

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि पर प्रकाश डाला. अशोक के काल का वैराट (जयपुर राज्य) का लेख, महाराणा कुम्भा के चतुरस्र बड़े सिक्कों एवं राजपूताने के कई पुराने सिक्कों को प्रकाश में लाने का श्रेय आपको है. श्री कार्लाइल ने भी इस प्रदेश के कई शिलालेखों एवं सिक्कों का पता लगाया, मुख्यतः शिवि जनपद की मध्यमिका (नगरी मेवाड़) के सिक्के और मेवाड़ के प्रथम राजा गुहिल के सिक्के सबसे पहिले उन्हीं को मिले थे. श्री गैरिक ने भी इस प्रदेश का विस्तृत दौरा किया. वे मुख्यतः चित्तौड़ के कीर्तिस्तम्भ की बची हुई दो शिलाओं तथा रावल समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० के चित्तौड़ के शिलालेख का चित्र सर्वप्रथम प्रसिद्धि में लाये.

जर्मनी के डा० बूल्हर और इटली के डा० तैसीतोरी के अलावा उसी काल में कुछ अन्य विदेशी विद्वानों ने भी इस प्रदेश के ऐतिहासिक शोधकार्य में अपना योगदान दिया. 'पतंजलि के महाभाष्य' का सम्पादन करने वाले जर्मन विद्वान् डा० कीलहार्न (१८४०-१९०८) अंग्रेज विद्वान् पीटर पिटर्सन (१८४७-१८९९) डा० वेब जिन्होंने १८९३ में "दी करेन्सीज़ आफ दी हिन्दू स्टेट्स आफ राजपूताना" नामक पुस्तक लिखी, डा० फ्लीट (१८४७-१९१७) एवं सेसिल बेंडाल नामक विद्वानों ने भी राजपूताना के इतिहास की कई बातों को प्रकाश में लाने का कार्य किया।

अन्य भारतीय शोधकर्त्ताओं में श्वेताम्बर समुदाय के जैनाचार्य श्री विजयधर्म सूरि (१८६८-१९२२) का नाम उल्लेखनीय है, जो संस्कृत और प्राकृत के प्रकांड पंडित, दर्शनशास्त्री तथा जैन इतिहास के शोधक विद्वान् थे. अपनी चतुर्मास यात्राओं के दौरान में वे स्थान-स्थान पर प्राप्त शिलालेखों का संग्रह किया करते थे. 'देवकुल पाटक' नामक पुस्तिका में उन्होंने उदयपुर के देलवाड़ा नामक स्थान तथा प्राचीन नागदा नामक स्थान से प्राप्त हुए जैन लेखों का संग्रह प्रकाशित किया, इसके अतिरिक्त उनके संग्रह किये हुए लगभग ५०० शिलालेखों का एक अलग ग्रन्थ "प्राचीन लेख संग्रह भाग १" के नाम से मुनिराज श्रीविद्याविजयजी ने १९२९ में प्रकाशित कराया था.

एक अन्य विद्वान् एवं शोधक श्री मुंशी देवीप्रसाद (१८४८-१९२३) ने भी राजपूताने के ऐतिहासिक शोध के कार्य में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया. जोधपुर राज्य की सेवा में काम करते हुए उन्होंने मुगलकाल के अनेक फारसी ग्रंथों का हिन्दी में रूपान्तर किया और उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर आदि के कई राजाओं के चरित्र भी हिन्दी और उर्दू में प्रकाशित कराये. मुंशीजी ने स्थान-स्थान पर जाकर शिलालेखों की छापें तैयार कराई तथा प्रतिहार राजा बाउक और कक्कुक के शिलालेख और दधिमति माता के मन्दिर के गुप्त संवत् २८९ (ई० सन् ६०८) के तथा जालौर आदि के शिलालेखों को पुस्तकाकार प्रकाशित किया. इसी काल में कलकत्ते के इंडियन म्युजियम के पुरातत्त्व विभाग के अध्यक्ष श्री राखालदास बनर्जी (१८८२-१९३०) ने, वेस्टर्न सर्कल से राजपूताने का सम्बन्ध होने से अजमेर, उदयपुर, बीकानेर, भरतपुर आदि राज्यों का दौरा कर अनेक स्थानों तथा वहाँ के शिलालेखों आदि का विवरण लिखा, जो राजपूताने के इतिहास के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ. इसी भाँति बंगाल एशियाटिक सोसायटी की ओर से डिंगल भाषा के ग्रन्थों का अनुसंधान करने वाले महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री (१८५६-१९३४) ने अपनी रिपोर्ट में डिंगल साहित्य के अलावा राजस्थान की क्षत्रिय, चारण एवं मोतीसर जातियों तथा शोखावाटी के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है.

कर्नल टाड के बाद राजपूताने के इतिहास की क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित रचना की दृष्टि से जिस दूसरे व्यक्ति ने कार्य अपने हाथों में लिया वह एक भारतीय एवं राजस्थानी था, दधवाड़िया गोत्र के चारण कविराजा श्यामलदास उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह के विश्वासपात्र व्यक्ति थे. महाराणा शम्भूसिंह ने अपनी मृत्यु के पूर्व मेवाड़ के इतिहास पर एक ग्रन्थ रचना कराने का इरादा जाहिर किया था और योजना भी बनवाई थी, जिसको उनके विद्याप्रेमी उत्तराधिकारी महाराणा सज्जनसिंह ने पूरा किया. उन्होंने इस कार्य के लिये एक लाख रुपया स्वीकृत कर राज्य के वृहद् इतिहास के प्रकाशन का उत्तरदायित्व कविराजा श्यामलदास को दिया. इस महान् कार्य को सम्पन्न करने के लिये उदयपुर में अंग्रेजी, फारसी और संस्कृत जानने वाले विद्वानों को आमन्त्रित किया गया. राज्य एवं राज्य के बाहर के अनेक शिलालेखों की छापें तैयार कर मँगाई गई तथा भाटों एवं चारणों आदि से बहुमूल्य सामग्री एकत्रित की गई. यह वृहद्ग्रन्थ २७०० पृष्ठों का है और चार भागों में प्रकाशित किया गया और उसका नाम "वीरविनोद" रखा गया.

Jain Education International www.jainelibrary.org

इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह है कि उसमें कर्नल टाड की कई बातों को स्पष्ट एवं संशोधित किया गया है और टाड ग्रन्थ की समाप्ति के काल से आगे महाराणा सज्जनसिंह के शासनकाल अर्थात् १८८४ तक का मेवाड़ का इतिहास दिया गया है. दूसरी विशेषता यह है कि इसमें अनेक शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों, राजकीय पत्र-व्यवहार, बादशाही फरमान आदि का बहुत अच्छा संग्रह हुआ है. तीसरी विशेषता यह है कि इसमें मेवाड़ के विस्तृत इतिहास के साथ-साथ राजपूताना तथा बाहर के अन्य राज्यों का, जिनका किसी न किसी रूप में मेवाड़ के साथ सम्बन्ध रहा, संक्षिप्त इतिहास भी लिखा गया है. ग्रन्थ की समाप्ति महाराणा फतहसिंह के काल में हुई, जिन्होंने ग्रन्थ का प्रचलन उचित न मान कर, छप जाने के बाद भी प्रकाश में नहीं आने दिया. इसका परिणाम यह हुआ कि विद्वान् इस महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ का लाभ बहुत काल बाद में उठा सके.

इसी काल में एक अन्य काव्यमय ऐतिहासिक ग्रंथ 'वंशभास्कर' की रचना की गई. इसके लेखक बूंदी के कविराजा सूरजमल जो राजस्थानी साहित्य के पूर्व आधुनिक काल के सबसे बड़े कवि माने गये हैं. ये स्वभावसिद्ध कवि एवं षट् भाषाज्ञानी थे और न्याय, व्याकरण आदि अनेक विषयों में पारंगत थे. 'वंशभास्कर' डिंगल भाषा में रचा गया काव्य ग्रंथ है. जिसमें लगभग सवा लाख पद हैं. 'वीरविनोद' की भाँति यह ग्रंथ भी बूंदी नरेश की सहायता से तैयार किया गया था. किन्तु बाद में कवि ने अपनी स्वतन्त्र प्रकृति के कारण जब बूंदी-नरेश रावराजा रामसिंह के गुण-दोषों का वर्णन प्रारम्भ किया तो रावराजा सहमत नहीं हुए. इस पर कवि ने ग्रन्थ को अपूर्ण छोड़ दिया. चारण कवि का लिखा हुआ होने पर भी 'वंशभास्कर' पर्याप्तरूप से प्रामाणिक माना जाता है.

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में राजपूताने के इतिहास की शोध, मनन एवं रचना की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण प्रयास डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने किया. ओझाजी अपने काल के उत्कट विद्वान् एवं इतिहास के अद्वितीय ज्ञाता हुए हैं. विद्याध्ययन करने के बाद उनका सम्पूर्ण जीवन इतिहास की खोज में बीता. प्रारम्भ में उदयपुर में रहकर आपने 'वीरविनोद' जैसे महान् ग्रन्थ की रचना को पूर्ण करने में कविराजा श्यामलदास को अपनी सेवाएँ दीं. वे सन् १९०८ में राजपूताना म्यूजियम अजमेर के क्यूरेटर बनाये गये, जहाँ लगभग ३० वर्षों तक काम करते रहे. श्री ओझा ने अथक खोज के आधार पर राजपूत वंशों की वंशावलियों में जो शृंखलाएँ टूटती थीं, अथवा त्रुटियां थीं, उन सबको पूरा एवं ठीक किया. आपने कई हस्तलिखित ग्रन्थ, प्राचीन सिक्के, शिलालेख एवं ताम्रपत्र आदि एकत्र किये, जिनके आधार पर बाद में आपने राजपूताना के राज्यों का नवीन इतिहास तैयार किया. इस नवीन इतिहास में आपने कर्नल टाड द्वारा की गई भूलों को सुधारा, अतिशयोक्तिपूर्ण किम्बदंतियों एवं गाथाओं को ठीक किया और इस प्रदेश के इतिहास को नवीन ढंग से वैज्ञानिक आधार पर तैयार किया. ओझाजी का राजपूताने का इतिहास अत्यधिक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया और उसको इस प्रदेश के इतिहास लेखन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण घटना माना गया. ओझाजी से लगभग १०० वर्ष पूर्व कर्नल टाड ने राजपूताने के इतिहास के सम्बन्ध में जो ग्रन्थ तैयार किया उसको 'राजपूताने के इतिहास का कीर्तिस्तम्भ' पुकारा गया था. श्री ओझा के नवीन इतिहास को 'राजपूताने के इतिहास का दूसरा भव्य 'कीर्तिस्तम्भ' कहा गया.

ओझाजी ने टाड कृत राजस्थान का सम्पादन कार्य भी प्रारम्भ किया था, किन्तु वह कार्य अपूर्ण रहा. सन् १८९४ में आपने 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' नामक अपूर्व ग्रन्थ की रचना की जिसके कारण आपको अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई. उस समय तक संसार की किसी भी भाषा में ऐसा अनूठा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ था. १९१८ में इस ग्रंथ पर आपको 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' भेंट किया गया. १९०७ में आपने सोलंकियों का इतिहास लिखा, जिस पर नागरी प्रचारिणी सभा ने आपको एक पदक देकर सम्मानित किया. १९२८ में आपने मध्यकालीन भारतीय संस्कृति पर प्रयाग की हिन्दुस्तानी अकादमी में तीन व्याख्यान दिये जो पुस्तकाकार प्रकाशित किये गये. आपके ७० वें जन्मदिवस पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से आपको अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया जो 'भारतीय अनुशीलन' के नाम से प्रकाशित हुआ.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भारत के राष्ट्रीयता आन्दोलन के विकास ने भारतीयों को अपने देश के इतिहास की शोध एवं रचना की दृष्टि से भारी प्रेरणा प्रदान की. राजस्थान के इतिहास के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है. स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व के वर्षों और बाद में राजस्थान के विभिन्न राज्यों के अलग-अलग एवं उनके अलग-अलग कालों पर कई शोधपूर्ण ग्रन्थों की रचना की गई है. हरविलास शारदा कृत महाराणा कुम्भा एवं महाराणा सांगा ग्रन्थ, डा० मथुरालाल शर्मा कृत कोटा राज्य का इतिहास, डा० रघुवीरसिंह कृत पूर्व आधुनिक राजस्थान, रतलाम का प्रथम राज्य, मालवा में युगान्तर अमर ग्रन्थ, पृथ्वीसिंह मेहता कृत 'हमारा राजस्थान', महामहोपाध्याय श्रीविश्वेश्वरनाथ रेउ कृत मारवाड़ का इतिहास, श्रीहनूमान शर्मा कृत 'जयपुर राज्य का इतिहास', श्री जगदीशसिंह गहलोत कृत 'मारवाड़राज्य का इतिहास', राजपूताने का इतिहास भाग २, श्रीरामनारायण दुग्गड़ कृत राजस्थान रत्नाकर, राणासांगा, पृथ्वीराज चरित्र, पंडित रामकरण आसोपा द्वारा रचित एवं सम्पादित विभिन्न ग्रन्थ आदि प्रमुख हैं. इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों में मुगल काल, मराठा काल एवं आधुनिक काल से सम्बन्धित राजस्थान के इतिहास के कतिपय शोध प्रबन्ध विभिन्न विद्वानों द्वारा तैयार किये गये हैं, जो विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत हैं.

एक लम्बे अर्से से राजस्थान में राजस्थान के प्राचीन इतिहास की शोध की दृष्टि से कई संग्रहालय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी कार्य कर रहे हैं. भूतपूर्व रियासतों में नरेशों द्वारा स्थापित पुरातत्त्व संग्रहालयों एवं पुस्तकालयों ने इस दिशा में भारी प्रयास किया और आज भी उनमें से अधिकांश उपयोगी कार्य कर रहे हैं. जिनमें विक्टोरिया म्यूजियम एवं सरस्वती भंडार उदयपुर, शार्दूल रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर, अलबर्ट म्यूजियम जयपुर, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, अलवर म्यूजियम, जोधपुर म्यूजियम आदि प्रमुख हैं. इन सभी संग्रहालयों में शिलालेखों, सिक्कों, ताम्र-पत्रों, शस्त्रास्त्रों एवं हस्तलिखित पुस्तकों आदि का संग्रह है. राजस्थान का आर्केयोलोजिकल विभाग राज्य के विभिन्न भागों में सर्वे एवं खुदाई का कार्य कर रहा है और प्राचीन ऐतिहासिक खोज में निरन्तर संलग्न है. इस समय राजस्थान में मुख्यतः आहड़, बीकानेर, भरतपुर, वैराट् आदि कतिपय स्थानों पर खुदाई आदि के काम हो रहे हैं, जिनसे प्रागैतिहासिक काल तथा बाद के काल की महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ उपलब्ध हुई हैं.

इन संस्थाओं ने पिछले अर्से में कई बहुमूल्य हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह एवं प्रकाशन कार्य किया है. इनमें से कतिपय संस्थाओं द्वारा शोधपत्रिकाएँ भी प्रकाशित की जाती हैं, जैसे कि राजस्थान विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'शोध पत्रिका' शार्दूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट द्वारा प्रकाशित 'राजस्थान भारती', राजस्थानी शोध संस्थान की 'परम्परा', पिलानी का प्रकाशन 'मरु भारती' बिसाऊ की 'वरदा' ये पत्रिकाएँ राजस्थान में हो रहे इतिहास के शोध कार्य का सही दिग्दर्शन कराती हैं और प्रेरणा देती हैं.

इस समय राजस्थान में प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज, शोध एवं प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य मुनि जिनविजय के मार्गदर्शन में जोधपुर स्थित एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित राजस्थान प्राच्य विद्याप्रतिष्ठान जोधपुर कर रहा है. एक तरह से यह प्रतिष्ठान मुनि जिनविजय की ही कृति है और उनके संकल्प एवं संयोजन के कारण आज उसने एक बृहद् रूप धारण कर लिया है पिछले काल में उसने विभिन्न विषयों के कई हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशन एवं सम्पादन का कार्य किया है. मुनि जिनविजय संस्कृत और प्राकृत के बड़े विद्वान् हैं. जैन साधनों से उपलब्ध होने वाले प्राचीन इतिहास से उन्हें सदैव से बड़ा अनुराग रहा है. आपने प्राचीन जैन लेखों की दो पुस्तकें प्रकाशित कीं, जिनमें से एक में सुप्रसिद्ध जैन राजा खारवेल का लेख है. दूसरी वृहत्काय पुस्तक में गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना आदि से मिलने वाले ५५७ लेखों का संग्रह है. इसके अतिरिक्त आपने शताधिक इतिहास सम्बन्धी ग्रन्थों का संपादन किया है. दर्जनों ऐतिहासिक निबन्धों द्वारा पुरातात्त्विक जगत् की अनुकरणीय सेवा की.

राजस्थान का इतिहास जितना लम्बा रहा है, ऐतिहासिक सामग्री भी उतनी ही विपुल रही है. राजस्थान के प्राचीन इतिहास के शोध, मनन एवं सम्पादन का कार्य जितना विशाल है, उतना ही परिश्रमपूर्ण एवं कठिन भी है. आज भी इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र के कई विद्वान् इस जटिल एवं श्रमसाध्य कार्य के सम्पादन में जुटे हुए हैं जिनमें डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० दशरथ शर्मा, डा० सत्यप्रकाश, मुनि श्री कान्तिसागर जी, डा० रघुवीर सिंह, डा० एच० डी० सांकलिया, डा० मथुरालाल शर्मा, डा० गोपीनाथ शर्मा, श्रीगोपालनारायण बहुरा, डा० रामचरण राय, श्री देशराज जधीना, श्री अगरचन्द नाहटा, डा० मोतीलाल मेनारिया, श्री विद्याधर शास्त्री, श्री महावीर सिंह गहलोत, श्री कन्हैयालाल सहल, श्री रत्नचन्द अग्रवाल, श्री परमेश्वर सिंह सोलंकी, डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह, श्रीविजयशंकर श्रीवास्तव, डा० पृथ्वीसिंह मेहता, श्रीनारायण सिंह भाटी जैसे विद्वान् एवं परिश्रमी शोधक राजस्थान के इतिहास की शोध के पुनीत कार्य में संलग्न हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org